सामायिक साधना और आचार्य श्री

□ श्री फूलचन्द मेहता

अनुक्रमे संयम स्पर्शतोजी, पाम्यो क्षायिक भाव रे ।
संयम श्रेणी फूलड़ेजी, पूजूं पद निष्पाव रे ।।

आत्मा की अभेद चिंतनारूप अतिशय गंभीर स्वानुभूतिपूर्वक समझने योग्य अनुक्रम से उत्तरोत्तर संयम स्थानक को स्पर्श करते हुए, अनुभव करते हुए क्षायिक भाव (जड़परिणति के त्यागरूप) मोहनीय कर्म क्षय करके उत्कृष्ट संयम स्थान रूप क्षीण मोहनीय गुणस्थान को प्राप्त हुए श्री वर्द्धमान स्वामी के पाप-रहित चरण कमलों को संयम श्रेणी रूप भाव-पुष्पों से पूजता हूँ—वन्दन-नमस्कार करता हूँ तथा अनन्य उपासना से उनकी आज्ञा की आराधना करता हूँ ।

प्रस्तुत विषय परम गंभीर है, गूढ़ है, अति गहन व सूक्ष्म है । अतः विषय के प्रतिपादन में दृढ़ निष्ठा-लगन-रुचि-श्रद्धा-सम्यक् विवेक व आचरण-बल की अपेक्षा है । इतनी क्षमता-योग्यता-शरणता व अर्पणता के अभाव में भी विचार-पूर्वक क्षमतानुसार शान्त-स्थिर-एकाग्र चित्त से श्री जिन वीतराग प्रभु के प्रति अत्यन्त आस्थावान होकर श्री परम सद्गुरु कृपा से सजग होकर विषय की गहराई को छूने का प्रयास मात्र कर रहा हूँ । भूल, त्रुटि, अवज्ञा, अविनय और विपरीतता कहीं हो जाय तो क्षमाप्रार्थी हूँ तथा विज्ञजनों से अपेक्षित सुधार-सुझाव की कामना करता हूँ ।

विषय एक है जिसके सूत्र तीन हैं फिर भी तीनों एकरूप हैं । सामायिक-साधना में साधक (साधक चाहे आचार्य हो, उपाध्याय हो, साधु हो अथवा सम्यग्दृष्टि) मूल पात्र है । वही सामायिक-साधना का अधिकारी है ।

यहाँ हम सर्वप्रथम साधक के स्वरूप का विचार करेंगे । वैसे साधना के योग्य मूल साधक आचार्य-उपाध्याय व साधु हैं और साध्य हैं श्री अरिहन्त-सिद्ध दशा, जो आत्मा की परिपूर्ण शुद्ध दशा है ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

साधक का स्वरूप :

यहाँ हम सर्वप्रथम साधक के स्वरूप की व्याख्या करेंगे। साधक वह है जो संज्ञी है, भवी है, उत्तम कुल व उत्तम सदाचार से युक्त है, जीवन व्यसनों से मुक्त है, विनय-सरल परिणामी, मैत्री, प्रमोद, करुणा, माध्यस्थ भावना से युक्त है, विशालता, कषाय की उपशान्तता, विषयों में तुच्छता जिसके भासित हुई है, मुक्त होने की तीव्र अभिलाषा जिसमें उत्पन्न हुई है। संसार जिसे अनित्य क्षण-भंगुर, विनाशशील, असार रूप स्वप्न तुल्य लगा है, सत्संग में अत्यंत प्रीतिवन्त, सच्चे देव, गुरु, धर्म की दृढ़ श्रद्धा हुई है। जीवन में त्याग-वैराग्य व उपशम भाव प्रगट हुए हैं, जिसकी प्रवृत्ति भी वैराग्य विवेक से युक्त आत्मार्थ हेतु मोक्षमार्ग की आराधना में लीन है। ऐसा साधक परम योग्य पात्र है। पात्रता के अभाव में साध्य की प्राप्ति के लिए साधना असंभव है। अतः मोक्ष मार्ग की आराधना का अधिकारी सम्यग्दृष्टि, श्रावक, निर्ग्रन्थ मुनि, उपाध्याय व आचार्य हैं।

नमस्कार मंत्र में पाँच पद हैं—अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और निर्ग्रन्थ मुनि। इन पाँचों पदों में अरिहन्त व सिद्ध देव पद तथा आचार्य, उपाध्याय व साधु गुरुपद में आते हैं। ये पाँचों पद आत्मा की अवस्थाएँ हैं। ये पद शाश्वत हैं, सत्यमय हैं, गुण वाचक हैं, भाव वाचक हैं, आत्मस्वरूप हैं। इनमें आचार्य-उपाध्याय एवं साधु तीन पद साधक रूप में हैं। इनका किसी जाति, कुल, मत, गच्छ, सम्प्रदाय, वेष, लिंग अथवा अमुक क्रियाकाण्ड से सीधा संबंध नहीं है क्योंकि ये रूप बाह्य हैं, चिह्न हैं, वास्तविक नहीं हैं। ये मूर्त्तिक, भौतिक व नश्वर हैं। साधक का स्वरूप अमूर्त्तिक है, सत्यमय है, चैतन्यमय ज्ञानादि गुणों से युक्त है।

साधक की दशा अप्रमत्त है, असंग है, निस्पृह व निष्काम है, जाग्रत है, समुत्थित है, ज्ञाताद्रष्टा रूप परम वीतराग दशा पाने के पुरुषार्थ में लीन है। अन्तरमुख उपयोग आत्मज्ञान-ध्यान में स्थित रहते हैं। उनका पूरा जीवन बाह्य व आभ्यंतर रूप से स्व-पर कल्याणकारी प्रवृत्ति में समर्पित होता है।

इन साधकों में आचार्य पद का निर्वहन करने वाले ही तीर्थंकर देव की अनुपस्थिति में धर्मतीर्थ का संचालन करते हैं। साधु, उपाध्याय दोनों ही आचार्य की आज्ञा में स्व-पर कल्याण में प्रवृत्त होते हैं। वैसे आचार्य-उपाध्याय-साधु तीनों साधु ही हैं, उन्हें पंचाचार का, रत्नत्रय धर्म का, दशविधि श्रमणधर्म का, अहिंसादि महाव्रतों का, बारह प्रकार के तपश्चरण का यथावत् पालन करना होता है, बाईस परीषहों को जीतना होता है, स्वाध्याय-ध्यान में लीन होना होता है। इनके मूल लक्षण आत्मज्ञान-समदर्शिता मात्र पूर्व कर्मोदय को भोगने रूप निष्काम प्रवृत्ति वह भी समिति-गुप्ति युक्त जिनाज्ञानुसार स्वाध्याय चिन्तन,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मनन, ध्यान हेतु है जो असंग-अप्रमत्त-वीतराग और मुक्त होने के लिए पात्र है। ये साधक जीवन-मरण में, सुख-दुःख में, शत्रु-मित्र में, निन्दा-प्रशंसा में, हर्ष-शोक में, लाभ-अलाभ में अथवा कैसी ही परिस्थितियों में चाहे अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल हो, समभावी, मध्यस्थभावी और उदासीन वृत्ति से रहते हुए कर्म-निर्जरा के हेतु आत्माभिमुख रहते हैं। आत्मोपयोग ही इनका मुख्य लक्षण है। आत्मशुद्धि में निरंतर वर्द्धमान रहते हैं। इस क्रम से ही धर्म ध्यान से शुक्ल ध्यान में पहुँचकर वीतरागता-सर्वज्ञता को वरण करते हैं।

इन साधकों में आचार्य की दुहरी जिम्मेदारी है—आत्म-ज्ञान-आत्म-ध्यान में रहते हुए साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका व अन्य जिज्ञासु मुमुक्षु भव्य जीवों को जिनाज्ञानुसार बोध देकर मोक्षमार्ग में स्थित करते हैं, पंचाचार का स्वयं पालन करते हुए उन्हें भी पालन करवाते हैं। जिन्हें दोष लगता है, उन्हें प्रायश्चित विधि से शुद्ध कर रत्नत्रय धर्म में स्थित करते हैं। ऐसे महान् ज्ञानवन्त, वैराग्य-वन्त, क्षमावन्त, तपोवन्त, आचारवन्त-आधारवन्त, धर्मप्रभावक, धर्मग्रन्थों के निर्माता, परम कुशल धर्मोपदेशक, सभी धर्म दर्शनों के ज्ञाता, रहस्य को जानने वाले, अकाट्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले, परम दयालु, परम कल्याणी आचार्य पद को सुशोभित करते हैं।

सामायिक का स्वरूप :

साधक की साधना का मूल सामायिक है। सामायिक चारित्ररूप है, चारित्र आचरण रूप है और आचरण धर्म रूप है तथा धर्म आत्म-स्वभाव स्वरूप है। यही आत्म साम्य है, स्थिरता है, आत्म रमणता है और वीतरागता है जहाँ कषाय-मुक्ति है। अतः सामायिक लक्ष्य रूप भी है तो साधन रूप भी है। सामायिक का वास्तविक प्रारंभ मुनि अवस्था से क्षीण मोह गुण स्थान तक अर्थात् यथाख्यात चारित्र जो परिपूर्ण वीतराग स्वरूप है, होता है।

'आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठ' (श्री भगवती सूत्र)

अर्थात् देह में रहते हुए भी देहातीत शुद्ध चैतन्य स्वरूप में रमणता रूप समवस्थित होना ही सामायिक है।

मोह-क्षोभ-चपलता-संकल्प-विकल्प-आशा-इच्छा, रागद्वेषादि विकारों से सर्वथा रहित स्वावलम्बन-स्वाधीन-स्वतन्त्र निजी स्वभाव रूप ज्ञाता द्रष्टामय वीतरागता से सतत भावित होना सामायिक है। इस सामायिक चारित्र के मूल लक्षण उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच (निर्लोभता), उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, उत्तम

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मचर्य आदि दश विधि लक्षण धर्म हैं जिनसे सामायिक की सच्ची पहचान होती है। ऐसे साधक के नियम से अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, पाँच समिति, तीन गुप्ति, बाईस प्रकार के परीषहों को जीतने की सामर्थ्य, बारह प्रकार के तपश्चरण की योग्यता होती है। स्वाध्याय-ध्यान ही मुख्य रूप से सामायिक की खुराक है। सामायिक की त्रिकरण त्रियोग से आराधना होती है, संवर-निर्जरा का परम मुख्य साधन सामायिक है। अतः सामायिक साधना भी है।

सम्यक् श्रद्धा भवेतत्र, सम्यक् ज्ञानं प्रजाये ।
सम्यक् चारित्र-सम्प्राप्ते, योग्यिता तत्र जायते ।।

अर्थात् सम्यक् चारित्र रूप सामायिक का मूल आधार सम्यक् श्रद्धा व सम्यक् ज्ञान है। इनके बिना चारित्र नहीं होता, समभाव की उत्पत्ति नहीं होती। श्रद्धा, ज्ञान व चारित्र की एकता ही मोक्ष मार्ग है। ये तीनों आत्मा के निजी गुण हैं। सामायिक मन, वचन, काया के सर्व ३२ दोषों से रहित, सर्व १८ पापों से रहित, शुद्ध आत्मस्वरूप है। यह सर्व कषायों की, कर्मों की नाशक है। सामायिक में साधक जितनी-जितनी स्थिरता, समभाव, सहजभाव बढ़ाता जाता है, उतना-उतना विशुद्ध सुविशुद्ध समभाव-वीतरागता बढ़ती जाती है और कषाय, क्लेशहीन होता हुआ घटता जाता है और अन्त में क्षय हो जाता है।

सामायिक द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव तथा मन, वचन, काया इस तरह सात प्रकार की शुद्धिपूर्वक होती है। द्रव्य से व भाव से, व्यवहार से व निश्चय से सामायिक आराधना होती है। स्व द्रव्य याने मात्र चैतन्य द्रव्य गुण पर्यायों में स्थिर अभेद स्वभावमय, क्षेत्र अपने ही असंख्यात प्रदेशों में समता, काल स्व-समयात्मक व भाव से स्वभाव रूप शुद्ध परिणामी, मन से विकारों से रहित, वचन से विकथाओं से मुक्त, काया से स्थिर आसनजय काय क्लेश तप सहित मात्र आत्म स्वरूप में स्थित होना सामायिक है।

साधना का स्वरूप :

साध्य है द्रव्य कर्म, भाव कर्म व शरीरादि से पृथक् मात्र शुद्ध निर्विकल्प, निरावरणमय, शुद्ध, बुद्ध, निर्मल, निर्विकारी, अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सामर्थ्य से युक्त सिद्ध दशा। जब साध्य सर्वोत्कृष्ट शुद्ध आत्म पद है तो साधना भी उत्कृष्ट-प्रकृष्ट निर्मल, सहज, स्वाभाविक, स्वाधीन, अपूर्व, अनुपम, अद्वितीय होनी चाहिये। साध्य स्वाधीन दशा है जहाँ पर द्रव्य का परभावों का योग नहीं तो साधना भी स्वावलम्बन से, स्वाधीनता से निज आत्मस्वरूपमय होनी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए। संसारी अवस्था में शरीरादि का, कर्मों का, राग-द्वेषादि भाव कर्मों का, योग है जो पराधीनता है, आकुलता रूप है। जन्म-मरण रूप चतुर्गति के भयंकर दुःख का कारण है, इन सबका कारण संयोग है और संयोग कर्मों का है, देहादि का है तथा अन्य इन्द्रिय विषयभूत सामग्री का है। इनका भी मूल जीव का अपना ही राग-द्वेष मोह अज्ञान भाव है। जीव इस दिशा में कितना पराधीन, परतन्त्र और दुःखी है कि किसी एक वस्तु का सुख भोगने के लिए उसकी आशा व इच्छा करता है। इच्छा चाह या राग करने के लिए कर्म का उदय चाहिये। कर्म के उदय के फलस्वरूप कोई न कोई वस्तु, व्यक्ति अथवा परिस्थिति चाहिये और वह भी अनुकूल हो तो इच्छा या राग की पूर्ति होती है अन्यथा प्रतिकूल संयोगों से व्यथित हो जायगा। किन्तु स्वाधीनता में स्व के लक्ष्य से स्वभाव में आने में किसी भी पदार्थ की आवश्यकता नहीं है। भोग में कठिनाई है स्व उपयोग में कहीं कोई बाधा नहीं है।

वैसे प्रत्येक जीव साधक है, साधना कर रहा है और साधना भी दुःख से रहित होने की और सुख पाने की, शान्ति-आनन्द पाने की दृष्टि से कर रहा है। अनादि से जीव कर्म सहित है, कर्मों के कारण देह का धारण है और कर्म प्रवाह रूप से आत्मा से सम्बन्धित है, कोई कर्म अनादि से नहीं है। कर्म भी क्षणिक है, पौद्गलिक है, विनाशशील है, संयोगी होने से वियोग रूप है तो कर्म का फल देह, स्त्री, पुत्रादि का, धन वैभव का संयोग शाश्वत कहाँ से हो ? देह आदि की अवस्थाएँ स्पष्टतः प्रतिक्षण बदल रही हैं। जन्म, बचपन, युवानी, जरापना, बुढ़ापा, मृत्यु स्पष्ट अनुभत में आ रही है। इस देह की खुराक अर्थात् इन्द्रियों की खुराक पौद्गलिक है। वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, शब्दादि रूप है। जिनमें ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, संवेदनशीलता, चैतन्यता अंश मात्र भी नहीं है जबकि आत्मा अरूपी, अरसी, अस्पर्शी, अगंधमय, अशब्दमय, अतीन्द्रिय है, अजर, अमर, अविनाशी है, ज्ञान, दर्शन लक्ष से युक्त है। मात्र इसे अपनी शक्ति का, वैभव का, चैतन्य रूप अनन्त ऐश्वर्य का भान नहीं होने से राग, द्वेष, मोह रूप वैभाविक दशा में चतुर्गति रूप संसार में त्रिविध ताप से तपित महादुःख उठा रही है। स्वरूप का बेभान होने का नाम ही मोह है, अज्ञान है। इन्हीं से परद्रव्यों में सुख की कल्पना कर, राग, द्वेष कर, कर्म बन्धन कर, जन्म-मरण की शृंखला से आप्लावित है। जड़ पदार्थों में सुख नाम का गुण ही नहीं है और वहां सुख खोज रहा है। कहीं अनुभव करता है और दुःख-क्लेश उत्पन्न हो जाता है यही नहीं, महा अनर्थ-कारी दुःख की शृंखला खड़ी कर रहा है। जो सुख क्षणिक लगता है वह भी सुखाभास है। सुख क्या है, दुःख क्या है, इसका परिज्ञान नहीं होने से अन्य संयोगों में ही सुख मान कर, मोह रूपी मदिरा के वशीभूत भटक रहा है। यह भी साधना है किन्तु दु-ख की कारण है। विभाव दशा है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मूल रूप में साधक की साधना आत्म-साधना है । इसके मुख्य दो रूप हैं—अंतरंग व बहिरंग ।

अंतरंग साधना—साधक सच्चे देव, गुरु, शास्त्र, धर्म का यथार्थ स्वरूप समझ कर यथार्थ श्रद्धान करे, उन्हें मन, वचन, काया व आत्मा से अर्पण होकर उनकी आज्ञा का निःशंकता से आराधन करे । जीवादि तत्त्वों का, सत्यासत्य का, मोक्ष मार्ग व संसार मार्ग का यथातथ्य निर्णय कर, हेय, ज्ञेय, उपादेय स्वरूप से उनके गुण धर्मों के आधार पर सत्यार्थ बोध कर मोक्ष मार्ग की आराधना करे अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप शुद्ध धर्म की आराधना करे तो ही साधना है, उसी से साध्य की प्राप्ति सम्भव है । साध्य आत्मा की विशुद्ध दशा है तो साधना भी आत्मा ही के द्वारा उसके अपने ज्ञानादि गुणों की आराधना करना है । विभाव दशा में पर का संयोग है जबकि स्वभाव दशा की साधना में निज का ही आलम्बन है । निज वैभव में ही सुख, आनन्द, ज्ञान, दर्शन का खजाना भरा पड़ा है । अतः शुद्ध रत्नत्रय धर्म की आराधना निज में ही निज के आलम्बन से होती है ।

जैसे पानी अग्नि के संयोग से शीतल स्वभावी होने पर भी उष्णता को प्राप्त हो जाता है और संयोग से हटने पर संयोग का कारण अग्नि नहीं होने से स्वतः अपने मूल शीतल स्वभाव में आ जाता है । उष्ण होने में अग्नि की तथा अन्य के सहयोग की आवश्यकता थी जबकि अपने स्वभाव में आने के लिए संयोग के अभाव में स्व-आलम्बन ही मुख्य है, अन्य का आलम्बन अपेक्षित नहीं । इसी तरह अनादि से पर संयोग से आत्मा संसारी विभाव दशा में है, उसके साधन पर द्रव्य का निमित्त व स्वयं का अज्ञान मोहादि भाव है । इन संयोगी भावों से व संयोगी पदार्थों से हटकर स्वयं के ज्ञान पूर्वक स्व में लीन होकर स्वभाव में आ सकती है चूंकि स्व में स्वाभाविक शक्ति है । स्वाधीनता ही सुख संतोषमय है और पराधीनता ही दुःख है, आकुलता रूप है ।

बहिरंग साधना—चूंकि आत्मा के साथ कर्मों का बंधन है, देहादि का संबंध है । इनके रहते हुए ही साधना सम्भव है । इनके अभाव में साधना का कोई अर्थ नहीं रह जाता ।

बाह्य साधना में मनुष्यत्व, उत्तम कुल, धर्म मत, सच्चे देवादि का निमित्त, भव्यत्व, मुक्त होने की तीव्र अभिलाषा, ज्ञानी के आश्रय में दृढ़ निष्ठा-पूर्वक तत्त्वादि का बोध, सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान के बल पर मिथ्यात्व से सम्यक्त्व में, अव्रत से व्रत में, प्रमाद से अप्रमाद में, कषाय से अकषाय भावों में, अशुभ योग से शुभ योग में आना, कुसंग से सत्संग में, असत्य प्रसंगों से, स्वच्छंदता से,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्या दुराग्रहों से मुक्त होकर ज्ञानी की आज्ञा का आराधन करना, स्वाध्याय, भक्ति, आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित, वैराग्ययुक्त होकर आत्म ज्ञान-ध्यान की श्रेणी में आरूढ़ होना। सत्संग को परम हितकारी मान कर परम भक्ति-पूर्वक उपासना करना, महाव्रतादि का यथावत् पालन करना, अष्ट प्रवचन माता की आराधना पूर्वक रत्नत्रय धर्म की शुद्ध आराधना हो, ऐसी निस्पृह निष्काम वृत्ति- प्रवृत्ति करना जिससे पापों से बचा जा सके, धर्मध्यान में लीन हुआ जा सके।

बहिरंग साधना भी मात्र अंतरंग रत्नत्रय धर्म की साधना की अनुसारी हो तभी दोनों मिलकर मोक्ष मार्ग साधने की प्रक्रिया हो सकती है।

हम आचार्य श्री हस्तीमलजी म० सा० के जीवन से यही प्रेरणा लें, अन्तरमुखी बनें। वीतरागता, सर्वज्ञता ही हमारा लक्ष्य है, इसे न भूलें। यह जीवन केवल खाने-पीने, भोगने-कमाने के लिए नहीं मिला है बल्कि इनसे छूटने के लिए और आत्मा की अनन्त वैभव शक्तियों को जगाने के लिए मिला है। ऐसी विरक्त आत्माओं से ही, उनके उपदेशों से, उनके बताये मार्ग से ही सच्चा सुख, शांति व आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। हमारे जीवन का मुख्य हितकारी भाग सामायिक, स्वाध्यायमय जीवन साधना रूप हो, तभी जीवन के अन्य सम्बन्धों में वैराग्य, विचार, विवेक, विरक्ति और वीतरागता की प्रसादी बढ़ा सकेंगे, निस्पृह रहना सीख सकेंगे। अल्प-जीवन में महा-पुरुषार्थ से अनन्त भवों के दु:खों से छूटना है। आचार्य श्री जीवन के हर प्रसंग में सामायिक-स्वाध्याय की प्रेरणा भव्य जीवों को करते रहते थे। उन्हीं की प्रेरणा से सामायिक संघ, स्वाध्याय संघ, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल की विभिन्न प्रवृत्तियां चल रही हैं। उनकी आत्मा अंतरमुखी होकर परमात्म स्वभाव को प्राप्त करे, यही मंगल कामना है।

—३८२, अशोक नगर, गौशाला के सामने, उदयपुर

❖ आत्म-स्थिरता ही सामायिक की पूर्णता है।

❖ जैसे घर से निकल कर धर्म-स्थान में आते हैं और कपड़े बदल कर सामायिक साधना में बैठते हैं, उसी तरह कपड़ों के साथ-साथ आदत भी बदलनी चाहिए और बाहरी वातावरण तथा इधर-उधर की बातों को भुला कर बैठना चाहिए।

—आचार्य श्री हस्ती

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org